Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language,
Online ISSN 2348-3083, SJ IMPACT FACTOR 2017: 5.068, www.srjis.com
PEER REVIEWED JOURNAL, JUNE-JULY 2018, VOL- 6/28

नागार्जुन के उपन्यासों में अभिव्यक्त धार्मिक चेतना का स्वरूप

रामयज्ञ मौर्य, Ph. D.

एसो0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मेरठ कॉलंज,मेरठ।

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

सभी भारतवासियों के जीवन का आधार धर्म है। आज के परिवर्तनशील युग में भी मानव का ईश्वर के प्रति विश्वास बना हुआ है। मानव कितना भी धर्म से भागे किन्तु धार्मिक संस्कारों से समाज के लोगो का पूर्णतः अलगाव नहीं हो सकता। हमारे समाज और सभ्यता म धर्म का वही स्थान है जो शरीर में आत्मा का होता है। डॉ0 गम्भीर का मत है कि –" जीवन के प्रत्येक अंग – प्रत्यंग में व्याप्त धर्म एक परमज्ञान है, परमज्ञान ज्योति है जोकि मानव को अंतर्ज्ञान व अंतःप्रकाश से संयुक्त कर उसकी ओर तथा उसकी प्ररणाओं की ओर संकेत करता है; सद्मार्ग की आर उन्मुख करता है; कुमार्ग पर अग्रसर होने से बचाता है; मानव से परे उस परमज्याति से हमारा परिचय करवाता है और यह स्पष्ट करता है कि ईश्वर यहीं पर विद्यमान है।[1]

आजादी के के उपरान्त भारत को धर्म–निरपेक्ष राज्य घोषित कर दिया गया है। धर्म के आधार पर किसी के साथ भेद–भाव नहीं किया जा सकता। संविधान की दृष्टि में सब धर्म समान है। आज धर्म का रूप परिवर्तित हो गया है। आज मानव के पाप–पुण्य का निर्णायक धर्म नही है। धर्म सदा से समाज का नियामक रहा है परन्तु आज धार्मिक क्षेत्र में भी भ्रष्टाचार फैल गया है। आज लोगों की धार्मिक भावना समाप्त होती जा रही है। अन्य कारणों के साथ कहीं न कहीं धार्मिक प्रतिष्ठान और संस्थान भी इसके उत्तरदायी है। 'मठ' और मन्दिरों में भी भ्रष्टाचार इस कदर फैल गया है कि यदि उनकी तरफ विशेष निरीक्षण दृष्टि डाली जाए तो आत्मा रो उठती है। प्रेमचन्द का कथन इस संबध में सटीक है; यथा–"हिन्दू समाज के परम पवित्र और माननीय मंदिरों की ओर दृष्टिपात करने से हृदय काँप उठता है। आज वहाँ दुराचार, पापाचार, भ्रष्टता तथा दुष्कृत्यों को देखकर आत्मा रो उठती है। ..... पुजारियों, मंहतो और धर्म गुरूओं का जीवन भयानक विलासिता से भरा हुआ है। .....जिस पर भी वे हिन्दू समाज के लिए पूज्य है और देवता तुल्य है। धर्म की आड़ में कितने ही निरीह लोगों को सताया जाता है। भूत–प्रेत, बच्चों की बलि चढ़ाना आदि अनेक प्रकार की पापलीला आज भी अशिक्षित समाज में अपनी जड़े "जमाये हुए है"। इससे समाज के विकास में बाधा आती है। यदि धर्म को उसके ठीक रूप में अपनाया जाए तो इससे मानव को अपना विकास करने की प्ररेणा मिल सकती है। वह नैतिकता के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। प्रेमचन्द का कहना है कि "धर्म के सच्चे सिद्धान्तों का प्रचार किया जाय, उसके इन मिथ्या–विश्वासों का नही जो हरेक धर्म के साथ उसी तरह निकल जाते है जैसे बाग

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

में पौधों के साथ घास निकल आती है।"[2]यदि इन घासों का समय रहते नही निकाला जाएगा तो पौधा नष्ट नही तो अस्वस्थ अवश्य हो जाएगा।

समय –समय पर धार्मिक चेतना का संबंध मानव कल्याण की भावना से जोड़ने का प्रयास किया जाता रहा है।वर्तमान काल में धर्म ने मानवता का रूप ग्रहण कर लिया ह। धर्म के वर्तमान स्वरूप के संबध में सुभाषिनी शर्मा ने लिखा है –"धर्म की सत्ता पर विज्ञान ने अपना प्रभाव बना लिया है। पुजारी–परोहितों के पूर्व निर्मित आदर्श अब विनष्ट होते जा रहे है। अब व्यक्ति अपनी क्रियाओं का निर्धारक स्वयं बनता जा रहा है।"[2]

इस प्रकार धार्मिक भावना मानव जीवन में किसी न किसी रूप में सदैव से चली आई है और आज भी बनी हुई है। आज़ादी के उपरान्त भी साहित्यकारों न विभिन्न रूप में धार्मिक चेतना का विवेचन किया है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में धर्म के बाह्मडम्बर, देवी –देवताओं की पूजा, भ्त–प्रेत आदि में अंधविश्वास, पशुबलि, मनौतियाँ, धर्म के प्रतीक मंदिरों, मठों एवं तीर्थस्थानों में जीवन, पाखंडी साधु एवं मंहतो का विलासी जीवन आदि का विस्तृत रूप में अंकन किया है जिसका विवेचन एंव विश्लेषण आवश्यक है।

एक बार एक साक्षात्कार में विजय बहादुर सिंह ने बाबा से प्रश्न किया –"आपकी बातों से ऐसा लगता है कि आप हिन्दू धर्म के काफी नजदीक जा रहे है। नागार्जुन का उत्तर– हिन्दु धर्म को व्यापक पैमाने पर मैं 'जन धर्म मानता हूँ। पर उसमें आप सामंतशाही और ब्राह्मणशाही हटा दीजिए। तुलसीदास के प्रति हमारी आपत्ति सिर्फ यही है– 'पूजिय विप्र ज्ञान गुनहीना। यह क्या मजबूरी है हमारी?"[3] धर्मिक निष्ठा के सम्बन्ध मं हिन्दू धर्म की जन–धर्म कहकर नागार्जुन ने अपनी दुराग्रहहीन दृष्टि का परिचय दिया है।

एक स्थान पर ब्राह्मण और धर्मशास्त्र के प्रति अपनी राय प्रकट करते हुए नागार्जुन कहते है– "सुनो ब्राह्मण की खोपड़ी यूँ तो ज्ञान का भण्डार होती है, परन्तु पुरातन पन्थी से वह एक किस्म का मालगोदाम बन जाती है या ऐसे कह लो –कबाडखाना। पण्डित सड़ी–गली रूढ़ियों से दम्भ और अहंकार के साथ चिपके हुए है। धर्मशास्त्र जो लिख गये, बस वही हमारी जाजम, वही हमारी ओढ़न।..... .....मुझे किसी भी तरह की पाखण्डलीला से नफ़रत है।"[4] दुर्भाग्य से इस देश में एक लम्बे समय से इसी धर्म को माना जा रहा है। जिस प्रकार कबीर ने समाज को फटकारा उसी प्रकार नागार्जुन ने भी अपने साहित्य में कई स्थान पर हिन्दुओं को फटकार लगाई है। पर यहाँ सुनता कौन है? सुने या कोई

---

[1] उर्मिल गंभीर : प्रताप नारायण श्रीवास्तव के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन पृ0–147
[2] प्रेमचन्दः विविध प्रसंग भाग –3, पृ0–155
[2]सुभाषिनी शर्मा : स्वतंत्रयोत्तर आँचलिक उपन्यास, पृ0–80
[3] शोभाकांत (सम्पादक) : मेरे साक्षात्कार (विजय से बातचीत), पृ0–58–59
[4] शोभाकांत (सम्पादक): मेरे साक्षात्कार (कृष्णा सोबती से बातचीत), पृ0–84

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

न सुने, नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में सुनाने की प्रक्रिया जारी रखी है। आडंबरों का उल्लेख ही नही किया है अपितु उनसे मुक्ति का रास्ता भी बताया है। ब्राह्मणों की कुलीनता केवल पूजा–पाठ तक ही सीमित है। जयनाथ भी अपनी कुलीनता इसी तरह सिद्ध करते हैं–"वे अधिक पढ़े लिखे नही थे, फिर भी एक कुलीन ब्राह्मण के साधारण दैनिक जीवन में जितनी उपासना और कर्मकाण्ड की आवश्यकता होती है, उतना तो जानते ही थे।प्रातः स्मरण, संध्या–तर्पण, पंचदेवता पूजन (शिव, विष्णु और दुर्गा का विशेष रूप से) चण्डी (सप्तसती) पाठ..... इतना बिना किए उन्हें चैन नही पड़ता।"[1] डॉ0 प्रभु शंकर शुक्ल कहते है–"यह चैन तो मात्र प्रदर्शन था । वे तो समाज में
छुट्टा साँड थे। हमेशा तलाश रहती थी उस गाय की जो 'हीट' पर हो ओर किसी खूँटे पर बँधी न हा।"[2]

बेचारी जनता का भी दुर्भाग्य है कि यह पाखण्ड को ही वास्तविकता समझ लेती है है। 'इमरतिया' का बाबा तो जेल कर्मचारियों और अधिकारियों तक को इससे प्रभावित कर लेता है– "मैं कल ऐसा त्राटक लगाऊँगा कि साहब की अकल गुम हो जाएगी। ईसाई है ना, ईसाइयो का दिल बंजर–विरान की तरह चटियल होता है, उसके अन्दर दूसरे धर्मो के लिए श्रद्धा का अंकर पैदा करना मुश्किल है। कुछ हो मान तो जाएगा ही। जरा भी रोब पड़ जाए तो अच्छा होगा। .....त्राटक वाला स्वॉग खूब सफल रहा। .....बड़ा जमीदार खुद आकर हमें बतला गया है, "साहब आप पर बड़े खुश थे। कह रहे थे, किसी ने बेचारें साधु को फँसा दिया है।"[3] यह ब्राह्माडम्बरों का ही परिणाम है कि साधु उपेक्षित और असाधु अपेक्षित रहते है। हमारे समाज में आज भी अंधविश्वास पूरी तरह व्याप्त है। लोग नदी, पेड़ आदि की पूजा आज भी करते दिखाई देते है। यथा –"एक जमींदार को ब्रह्मात्या का पाप लगा। उन्होनें– "कर्मकाण्ड केसरी वयोवृद्ध पंडित बुच्चन पाठक के आदेशानुसार कमला नदी में स्नान किया और यहीं एक पीपल के नीचे साधारण सा प्रायश्चित कर लिया।"[4] कैसी विडम्बना है कि नदी में स्नान कर और पेड़ की प्जा कर व्यक्ति ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है और पुण्ययुक्त भी हो जाता है। इस प्रकार के अंधविश्वास में जनता की लिप्तता को और अधिक व्यक्त करते हुए वे कहते हैं– "हमारी बिरादरी की वनस्पितियों पर भूतों , पिशाचों, यक्षों, देवों तथा ब्रह्मों का यह दया दृष्टि कोई नई बात नही है बेटा। इनका और हमार सदैव सम्पर्क रहा है। एक वह भी युग था जबकि हमारे पूर्वज मनुष्य की ताजा अँतडियों की माला पहना करते थे, एक वह भी युग था कि हमारे वेदियों पर कैदी राजाओं की आँखे निकालकर चढ़ा दी जाती थी, एक वह भी युग था कि ताजा कटी उँगलियों का हार पहनाकर वट–वृक्ष का श्रृंगार किया जाता था, नर –मुण्ड और आदमी का लहू यक्षों देवी ओर ब्रह्मों के

---

[1] नागार्जुनः रतिनाथ की चाची पृ0–18–19
[2] डॉ0 प्रभु शंकर शुक्लः नागार्जुन की आंचलिक सर्जना का मूल्यांकन, पृ0–199
[3] नागार्जन : इमरतिया, पृ0–62–63
[4] नागार्जुनः रतिनाथ की चाची, पृ0–110

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

दबाव में आकर जाने कितनी बार हमारे पुरखों को स्वीकार करना पड़ा है। मुझे तो खैर , बकरों की बलि से छुटकारा मिल जाता था। हाय हमारे पूर्वजों को जाने कैसी –कैसी वीभत्स रोमांचकारी परिस्थतियों से गुजरना पड़ा था।"[1] लोग अपनी मनौतियों को पूर्ण करने के लिए पशुबलि देते थे किन्तु वर्तमान में निरीह बच्चों की बलि देने के किस्से भी सुनने में आये है। नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'इमरतिया' में इस प्रकार का उदाहरण प्रस्तुत कर कुरीति को उजागर किया है; यथा–

"बेचारी लक्ष्मी। तूने जहर खाकर इस नरक से छुटकारा पाया था न? तेरा छः महीने का बच्चा टुकडे–टुकडे करके अग्निकुंड के हवाले कर दिया गया। अपने लाड़ले को तू बचा न सकी। बाबा की गालियाँ देती–देती पागल हो गयी। फिर तुझे बुखार चढ़ा। उसके बाद तेरा क्या हुआ, किसी को पता नही चला। लोगो को इतनाभर मालूम है कि जमनिया मठ की एक सधुआइन, लक्ष्मी अवधूतिन, जहर खाकर मर गई।..... चण्डी मैया को मनुष्य की बलि दी गई थी। महीनों पहले इसका प्रचार किया गया था।..... हजारों की भीड़ थी।"[2]

नागार्जुन के उपन्यास साहित्य में व्यक्त इस प्रकार की बलि प्रथा के सम्बन्ध में डॉ0 प्रभुशंकर शुक्ल का कथन है – ' नागार्जुन का दृष्टिकोण सही है कि कमजोर समाज की बलिवेदी पर युगो से बलि चढ़ता रहा है, वह पशु हो अथवा मनुष्य, इससे समाज के ढोंगी पाखंडियों को क्या लेना–देना । इसके मूल में भोली–भाली जनता को गुमराह करने की ही भावना का प्राधान्य है।"[3]

नागार्जुन के कथा साहित्य में व्यक्त धार्मिक चेतना का मूल्यांकन करते हुए निष्कर्षःत कहा जा सकता है–"मिथिलांचल की धार्मिक निष्ठा रूढिवादी है। इसका सबसे बड़ा कारण ब्राह्मण समाज है। उनकी स्वयं पाखंडो पर बड़ी प्रबल आस्था है। इसी आस्था को बनाए रखने से उनकी जीविका निरन्तर चलती रहती है। ब्राह्मणों को समाज में भू–सुर माना जाता है। यही कारण है कि समाज के इन वर्गो से सामान्य जनों की निष्ठा

---

[1] नागार्जुनः बाबा बटेसरनाथ, पृ0–60
[2] नागार्जुन : इमरतियां, पृ0–22
[3] डॉ प्रभशंकर शुक्लः नागार्जुन की आंचलिक सर्जना का मूल्यांकन, पृ0–203

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

का जमकर दोहन किया है। परिणाम स्वरूप अंधविश्वास समाज के प्रत्येक वर्ग में व्याप्त है। राजनीति और साहित्य तब इससे अछूते कैसे रहते है? यही कारण कि बाबाओं की संख्या घटने की बजाय निरन्तर बढ़ी है। धर्म के इन ठेकेदारों का जीवन नागार्जुन के उपन्यासों में बड़ा घिनौना है। कोई भी कुकर्म इनसे बचा नही हैं। धर्म की आड़ में सब ज़ायज है। धार्मिक संस्थान नागार्जुन के उपन्यासों में व्याभिचार, तस्करी, जासूसी और अनेक नृशंस कृत्यों के अड्डे है। इन अड्डो से समाज का यह सयाना वर्ग जुडा है जिसने नैतिकता के सारे मानदण्डों को ताक पर रख दिया है। स्वार्थ –साधन ही उनके जीवन का मूल मंत्र है। इस प्रकार के व्यक्ति अधिकतर तो उच्च और मध्यम वर्ग से आते हैं किन्तु लोभ के वशीभूत निम्नवर्ग के कुछ व्यक्ति भी उस दलदल में फँस जाते हैं जिससे निकलना इनके वश में नही रहता । निम्न वग के पाखण्ड प्रियता का सबसे बडा कारण आर्थिक दृष्टि से पिछड़ापन और अशिक्षा है।[1]

इस प्रकार नागार्जुन ने सच्चे मानव धर्म के अनुसार व्यवहार करने के लिए मानव को सचेत करने का प्रयास किया है, जिसमें वे पूर्णतः सफल हुए ह। अनेक उदाहरणों द्वारा उन्होनें समाज में धार्मिक चेतना फैलाने का प्रयास किया। उन्होने समाज में फैली अनके प्रकार की रूढ़ियों एवं कुमान्यताआ को छोडने पर भी बल दिया है जिससे समाज नवीन मार्ग पर अगसर हो सके। सभी प्राणियों के प्रति कल्याण की भावना ही नागार्जन की दृष्टि में सच्चा धर्म है।

[1] डॉ0 प्रभु शंकर शुक्लः नागार्जुन की आंचलिक सर्जना का मूल्यांकन, पृ0–205

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies